

महाराष्ट्र की संस्कृति पर जैनियों का प्रभाव



रिषभदास राँका

प्रागैतिहासिक काल

भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन, उन्नत और गरिमामय है। कुछ समय पूर्व यह अर्वाचीन मानी जाती थी। किन्तु धीरे-धीरे अनुसंधानों के प्रकाश में यह भ्रम दूर होता गया। मोहन-जो-दड़ो, हड़प्पा तथा अन्य अवशेषों से यह सिद्ध हो गया कि आर्यों के आगमन के पहले भी भारत में एक समुन्नत संस्कृति प्रवाहमान थी। डॉ. रामधारीसिंह 'दिनकर' ने लिखा है "यह मानना युक्तियुक्त है कि श्रमण संस्था आर्यों के आगमन के पहले विद्यमान थी।" और उसे श्रमण-संस्कृति कहा जा सकता है। इस श्रमण-संस्कृति का संपर्क किस संस्कृति के साथ था इस विषय में विभिन्न मत हैं। स्व. डॉ. रामधारीसिंह 'दिनकर' लिखते हैं—“पौराणिक हिन्दू-धर्म आगम और निगम पर आधारित माना जाता है। निगम है वैदिक प्रधान और आगम है श्रमण प्रधान। आगम शब्द वैदिक काल से चली आ रही वैदिकेतर धार्मिक परम्परा का वाचक है। बौद्ध धर्म की स्थापना भगवान बुद्ध ने की है जिनका काल पच्चीस सौ वर्ष पूर्व का निश्चित है। अतः बौद्धों के पहले भारत में श्रमण-संस्कृति थी और उसके जैन होने की संभावना ही अधिक है। भगवान बुद्ध के ढाई सौ वर्ष पूर्व जैनों के २३वें तीर्थंकर पाश्र्वनाथ हुए थे। वेदों में अरिष्टनेमि तथा ऋषभदेव का उल्लेख मिलता है, जो जैन तीर्थंकर थे। इसलिए अधिक संभव यही है कि प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति श्रमण-संस्कृति से मिलती-जुलती या जैन-संस्कृति थी। जैन अनुश्रुतियों से भी संकेत मिलते हैं कि जैन धर्म प्राचीन काल से चला आ रहा है।

देखना यह है कि वैदिक अर्थात् ब्राह्मण संस्कृति की क्या विशेषताएं थीं। यह संस्कृति यज्ञ प्रधान थी, जिसमें वेदों तथा ब्रह्म को श्रेष्ठ घोषित किया गया है। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए यज्ञ-कर्म को परम पुरुषार्थ माना गया। भौतिक सुखों को प्राप्त कर वर्तमान जीवन को

सुखी बनाने के लिए, प्रवृत्ति मूलक विचार और आचार प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में पाये जाते हैं। वर्तमान जीवन सुखी बनाने के लिए प्रयत्न करते थे और आराध्य देव की उपासना इसी दृष्टि से की जाती थी। कुछ प्रार्थनाएं दृष्टव्य हैं—

हम सौ वर्ष तक जियें।

हम सौ वर्ष तक अपने ज्ञान को बढ़ाते रहें।

हम सौ वर्ष तक पुष्टि और दृढ़ता को प्राप्त करें।

हम सौ वर्ष तक आनन्दमय जीवन व्यतीत करें।

हम सौ वर्ष तक अदीन होकर रहें।

जो स्वयं उद्योग करता है, इंद्र उसकी सहायता करते हैं।

जो श्रम नहीं करता, देवता उसके साथ मित्रता नहीं करते।

हम सदा प्रसन्नचित्त रहते हुए उदीयमान सूर्य को देखें।

ओ मेरे आराध्य देव।

आप तेज स्वरूप हैं, मुझमें तेज को धारण कीजिए।

आप वीर्य रूप हैं, मुझे वीर्यवान कीजिए।

आप बल रूप हैं, मुझे बलवान कीजिए।

आप ओज रूप हैं, मुझे ओजस्वी बनाइए।

आर्य पराक्रमी थे। वे अपने प्रयत्नों द्वारा तथा देवताओं को प्रसन्न कर उपलब्ध जीवन को सुखी बनाना चाहते थे। इसके लिए कर्म को प्राधान्य देते थे। वे प्रवृत्ति परायण थे।

प्राचीन श्रमण संस्कृति के लोग योग, संयम, अध्यात्म और पुनर्जन्म को मानने वाले प्रतीत होते हैं। स्व. डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने लिखा है कि "अति प्राचीन काल से भारत की मानसिकता दो धाराओं में विभक्त रही है, एक धारा कहती है कि जीवन सत्य है और हमारा कर्त्तव्य है कि हम बाधाओं पर विजय प्राप्त करके जीवन में जयलाभ करें एवं मानव बन्धुओं का उपकार करते हुए यज्ञादि से देवताओं को भी प्रसन्न करें, जिससे हम इस ओर उन दोनों

लोकों में सुख और आनन्द प्राप्त कर सकें, किन्तु दूसरी धारा की शिक्षा यह है कि जीवन नाशवान है हम जो भी करें किन्तु हमें रोग और शोक से छुटकारा नहीं मिल सकता, न मृत्यु से ही हम भाग सकते हैं। हमारे आनन्द की स्थिति वह थी, जब हमने जन्म लिया था। जन्म के कारण ही वासना की जंजीर में पड़े हैं। अतएव, हमारा श्रेष्ठ धर्म यह है कि हम उन सुखों से पीठ फेर लें, जो हमें ललचा कर संसार में बांधते हैं। इस धारा के अनुसार मनुष्य को घर बार छोड़ कर संन्यास ले लेना चाहिए और देह-दंडन पूर्वक वह मार्ग पकड़ना चाहिए, जिससे आवागमन छूट जाए।

दोनों संस्कृतियों के विचार में अपनी-अपनी विशेषता थी और उसमें जो तथ्य था उसे ग्रहण कर समन्वय द्वारा भारतीय संस्कृति ऐसी सशक्त बनी कि जो मानव जीवन को सही दिशा दर्शन में सक्षम हो। और अनेक आपदाओं के बीच वह अक्षुण्ण रह सके।

स्व. विट्ठलरामजी शिंदे ने भी भागवत धर्म के विकास में लिखा है कि भारत के विकास के इतिहास का प्रारम्भ वेद से माना जाता है, किन्तु वेद हिन्दू-संस्कृति का उद्गम नहीं है। वेद से पहले के अन्य लिखित प्रमाण न होने से ऐसा कहा जाता है किन्तु भारतीय संस्कृति वेदों से बहुत प्राचीन है। भारतीय आर्यों की संस्कृति के उद्गम स्रोत वेद हो सकते हैं। द्राविड़ 'ताम्रवर्णी', 'मोगल पीतवर्णी', शुद्ध 'कृष्णवर्णी', 'मिश्रवर्णी' इस प्रकार असंख्य मानववंश भारत में अनादि काल से बसते थे। उनके संस्कृति-महासागर में आर्य संस्कृति तेजस्वी किन्तु छोटी ही मिली है। यह बात विशेषज्ञ जान सकते हैं कि अखिल भारतीय संस्कृति का उद्गम वेद या आर्य संस्कृति मानना साहस ही होगा।

उत्तरभारत की तरह दक्षिण में भी आर्यों के आगमन के पहले जो जातियाँ बसती थीं उनकी संस्कृति के विषय में विद्वानों ने शोधन करके जो तथ्य प्रकट किए उसमें आर्यों के आगमन के पहले महाराष्ट्र में भागवत धर्म या श्रमण धर्म प्रचलित था। और आर्यों के आगमन के बाद उसमें आर्यों ने समझौता कर अपना लिया हो ऐसा लगता है क्योंकि आम जनता उन्हीं विचारों-आचारों से प्रभावित थी। आर्यों ने भागवत धर्म के देवताओं को अपनी उपासना में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।

महाराष्ट्र में आर्यों के आगमन के पहले जो भागवत धर्म प्रचलित था उसके रूप के विषय में स्व. विट्ठलरामजी शिंदे की मान्यता है कि, "किसी भगवान या देव, देवी या पूज्य पुरुष को भगवान के रूप में भक्ति करने वाले वे भागवत और उनका धर्म भागवत धर्म। इस दृष्टि से वे शिव, विष्णु, जैन और बौद्धों की गणना भी भागवतों में ही करते हैं। इस दृष्टि से शंकर, ऋषभ, कृष्ण उनकी दृष्टि से प्रारम्भ में वैदिकों के देव या पूज्य पुरुष नहीं थे जिन्हें वैदिकों ने बाद में अपना लिया। शिव भागवत सम्प्रदाय उनकी दृष्टि से जैनों से पूर्व का होना चाहिए। पर कुछ विद्वानों का यह भी मत विचारणीय है कि शंकर और ऋषभदेव एक हैं। क्योंकि दोनों का प्रतीक बैल (वृषभ) रहा है। दोनों को आदिनाथ कहा जाता था और दोनों की साधना में योग प्रमुख था। वे दोनों एक हों या भिन्न पर दोनों निवृत्ति

प्रधान थे और साधना में योग, चित्तशुद्धि और संयम को प्रधानता देते थे। वे अध्यात्म, साधना, सादगी, संयम, कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म को मानने वाले थे और पशु-यज्ञ के विरोधी थे। इसलिए प्रागैतिहासिक काल में महाराष्ट्र निवासियों की जो संस्कृति थी उसको और जैनों के विचारों में काफी साम्य था। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार दक्षिण की द्राविड़, नाग, राक्षस, वानर तथा विद्याधर इन जातियों में जैन धर्म का प्रचार था। भले ही ऐतिहासिक प्रमाण हूँदना आसान न हो तो भी उनमें काफी विचार साम्य था। ऐसा दिखाई देता है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन की मान्यता है कि, "जैन अनुश्रुति के अनुसार मानव-सभ्यता के प्रारम्भ से इस प्रदेश में सभ्य विद्याधरों की नाग, अक्ष, यज्ञ, वानर आदि जातियों का निवास रहा है। ये जातियाँ श्रमण संस्कृति की उपासक थीं। ब्राह्मण अनुश्रुति के अनुसार आगस्त्य पहले आर्य ऋषि थे जो विन्ध्या-चल को पार कर दक्षिण भारत में पहुंचे थे, परशुराम भी वहाँ गये थे। वनवास में रामचन्द्र भी वहाँ गये थे और वानरों की सहायता से लंका के राक्षस राजा रावण का अंत करने में सफल हुए थे। इससे प्रतीत होता है कि रामायण काल के लगभग वैदिक आर्यों के एक-दो छोटे उपनिवेश दक्षिण पंथ में स्थापित हो गये थे, किन्तु इसमें ईसवी सन् के प्रारम्भ तक कोई विशेष प्रगति नहीं हो पाई थी और दक्षिण पंथ अधिकांशतः अवैदिक एवं अनार्य ही बना रहा। दूसरी ओर जैन अनुश्रुति के अनुसार रामायण काल के भी बहुत पूर्व से मध्य प्रदेश के मानवों और दक्षिण पंथ के विद्याधरों में अबाध संपर्क रहा था। तीर्थंकर ऋषभदेव ने विजयार्ध के दक्षिण स्थित, नमि, विनमि आदि विद्याधर नरेशों के साथ विवाह एवं मैत्री संबंध भी किए थे। और उत्तरी पंथ के साथ-साथ यहाँ भी जैन धर्म का प्रचार किया था। भरत चक्रवर्ती ने अपनी दिग्विजय में दक्षिण के समस्त देशों को विजय किया था। उनके छोटे भाई बाहुबली को ऋषभदेव द्वारा पोदनपुर का राज्य दिया था जो दक्षिण में स्थित था। बाहुबली की विशाल मूर्तियों का निर्माण तथा उपासना दक्षिण भारत में ही अधिक हुआ है। रामायण काल में अयोध्या के सूर्यवंशी दशरथ, राम, लक्ष्मण आदि दक्षिण पंथ के पवनजंथ, हनुमान, बाली, सुग्रीव, नल-नील आदि वानर वंशी विद्याधर तथा लंका के राक्षसवंशी रावण, मेघनाद आदि सब जैन धर्म के उपासक बताए गए हैं। विद्याधर वैज्ञानिक आविष्कारों, लौकिक विद्या एवं कलाओं, धन तथा भौतिक शक्ति में उत्तरापथ वालों से बढ़े-चढ़े थे। किन्तु आध्यात्मिक उन्नति धर्म, दर्शन और चिन्तन में उन्होंने मानवों के गुरु तीर्थंकरों के समक्ष अपना मस्तक झुकाया था। और उनके शिष्य तथा उपासक बने। विद्याधरों के वंशजों को आधुनिक इतिहासकार द्राविड़ कहते हैं। द्राविड़ लोगों को अनार्य और अवैदिक ही नहीं भारत के प्रागार्य और प्राग्वैदिक निवासी मानते हैं। इस बात की संभावना को स्वीकार करते हैं कि द्राविड़ जाति ब्राह्मण परम्परा के शैव, वैष्णव आदि धर्म अपनाते के पहले जैन धर्मानुयायी थीं। महाभारतकाल में तीर्थंकर अरिष्टनेमि ने दक्षिण पंथ में स्वधर्म का प्रचार किया था और उनके भक्त कुरुवंशी पंच पांडव राज्य परित्याग कर दक्षिण की ओर चले गए थे। उन्होंने जैन मुनियों के रूप में कठोर तपस्या की थी।

उसी समय से दक्षिण में पांड्य देश, पंच पांडव, मलय, मदुरा आदि स्थान प्रतिष्ठ हुए।

इसी प्रकार प्रागैतिहासिक काल के विषय में डॉ. विद्याधर जोहारपुरकर ने 'महाराष्ट्र में जैनधर्म' में लिखा है कि, "गुणभद्र के उत्तर पुराण में ग्यारहवें और बारहवें तीर्थंकरों के मध्यवर्ती समय में प्रथम बलदेव का विहार गरुडध्वज पर्वत पर हुआ था। तथा जिनसेन के हरिवंश पुराण के अनुसार बाइसवें तीर्थंकर के समय अन्तिम बलदेव का देहावसान तुंगीगिरि पर हुआ। यह स्थान नासिक (महा.) जिले में तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है।

इतिहास कालीन महाराष्ट्र

महाराष्ट्र के संतों द्वारा साहित्य निर्माण और कर्तव्य बारहवीं शताब्दि से प्रारम्भ होता है। उस समय महाराष्ट्र में यादवों का शासन था। महाराष्ट्रीयन संस्कृति का उद्भव वास्तव में सात-वाहन युग से माना जाता है। इसलिए वहाँ से लेकर बारहवीं शताब्दि तक का राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का अवलोकन किये बिना महाराष्ट्र की संत परम्परा और उनके कार्यों का यथोचित मूल्यांकन संभव नहीं है। और महाराष्ट्र संतों के साहित्य पर जैन धर्म के प्रभाव को बताने के लिए इतिहासकालीन महाराष्ट्र की जान-कारी आवश्यक है।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान महावीर के पूर्ववर्ती काल में अर्थात् ढाई हजार वर्ष पूर्व महाराष्ट्र जैन-भिक्षुओं का विहार क्षेत्र रहा है। डॉ. केतकर ने अपने 'प्राचीन महाराष्ट्र' ग्रन्थ में लिखा है जैन सम्प्रदाय महावीर से पूर्व काल में महाराष्ट्र में था। महावीरोत्तर काल में उसके अधिक प्रसिद्ध होने की स्थिति रही। जैन धर्म का प्रचार बुद्ध काल में महाराष्ट्र में था, यह कहा जा सकता है।

'यह कल्पना थी कि बुद्ध ने श्रमण वर्ग का निर्माण किया था, किन्तु अब यह मान्यता नहीं रही, बल्कि श्रमणों की प्राचीनता बुद्ध के हजारों वर्ष पूर्व तक जाती है।'

उस्मानाबाद जिले के अन्तर्गत तेरकी गुफाओं के विषय में बर्जस कहता है कि ये गुफाएँ ईसा पूर्व ५०० से ६५० वर्ष पूर्व की होनी चाहिए क्योंकि करकंड के वहाँ आने की बात जैन साहित्य में मिलती है। जिसे डॉ. हीरालाल जैन ने स्वीकार किया है।

मगध नरेश नन्दीवर्धन ने दक्षिण देश के नागर खंड को जीत कर मगध साम्राज्य में मिला लिया था। अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु उत्तर के भीषण अकाल के समय बारह हजार साधुओं के साथ दक्षिण की ओर विहार कर गये थे। महानन्द, चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक के साम्राज्य में दक्षिण भारत का कुछ हिस्सा सम्मिलित था। इन नरेशों ने राजनैतिक या अन्य कारणों से दक्षिण की यात्राएँ की थीं, चन्द्रगुप्त के विषय में तो यह अनुश्रुति है कि उसने अपने गुरु के समाधि स्थान के पास श्रवणबेल-गोला में तपस्या की थी, वह जैन मुनि बन गया था और जैन संघों का उसने नेतृत्व भी किया था। अशोक के शिलालेख भी कर्नाटक के मस्की और महाराष्ट्र में

सोपारा में हैं। महाराष्ट्र में सातवाहन कुल द्वारा राज्य स्थापना के बाद का समय ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है।

डॉ. सांकलिया के मतानुसार:—'ऐतिहासिक दृष्टि से महाराष्ट्र में जैन साधुओं की गतिविधियों का विस्तार मौर्य साम्राज्य के समय (ईसा पूर्व तीसरी सदी) आचार्य भद्रबाहु और सुहस्ती के नेतृत्व में हुआ होगा। यह माना जा सकता है। इस प्रदेश के जैन साधुओं के विहार का सर्वप्रथम स्पष्ट प्रमाण वह संक्षिप्त शिलालेख है, जो पूना जिले के पास पाला ग्राम के निकट एक गुफा में प्राप्त हुआ है। लिपि के आधार पर यह लेख सन् पूर्व दूसरी सदी का माना गया है। इसमें भदन्त इन्द्र रसिन द्वारा इस गुहा के निर्माण का उल्लेख है।

सातवाहन काल

शालीवाहन कुल के राज्य की स्थापना ईसा पूर्व २४० से २३० में की थी। वह राज्य ई. सं. २१८ तक लगभग चार सौ वर्ष तक चला। जिसमें कई पराक्रमी राजा हुए।

सातवाहन राजा के शासनकाल में वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों को समुचित आश्रय मिला। इस कुल के राजा उदार, संस्कार-शील, विद्या और कला प्रेमी थे। इस कुल के राजा हल ने 'गाथा सप्तशती' नामक प्राकृत ग्रंथ की रचना की। जिस पर जैन धर्म का प्रभाव कहा जाता है। बौद्धों की कई गुफाओं का निर्माण हुआ और जैनियों द्वारा महाराष्ट्री प्राकृत में महत्वपूर्ण साहित्य की रचना हुई। सातवाहन काल में बौद्ध धर्म का काफी प्रभाव था। पश्चिम महाराष्ट्र की गुफा में सोपारा व तेर के अवशेष इसके प्रमाण हैं। नासिक में प्राप्त पत्थर की पट्टियों पर खुदे धर्म से संबद्ध त्रिरत्न आदि चित्र इसके प्रमाण हैं।

सातवाहन काल में अग्नि, इंद्र, प्रजापति इन देवताओं के साथ-साथ शंकर, उमा आदि देवों को आर्य देवों में सम्मिलित कर लेने की कल्पना इसी काल की है। इसमें संभवतः यह दृष्टि थी कि आर्य अनार्य में संघर्ष हो। वैदिक अभिमानियों ने, बौद्धों की लोकप्रियता कम करने के लिये धार्मिक कल्पना में परिवर्तन किया। यज्ञ विधियों को कर्मकांड बना दिया। यद्यपि सातवाहन ने अनेक यज्ञ किये थे। तथापि 'याथा सप्तशती' में यज्ञ संस्था व अग्निदेवता की अवहेलना ही दिखाई देती है। इसी काल में शैव, वैष्णव, भागवत, कापालिक आदि पंथियों का उदय हुआ।

सातवाहन काल के पूर्व से भारत में चातुर्वर्ण्य उत्तर की तरह दक्षिण में भी आर्य-अनार्य संघर्ष समाप्त प्राय हो, आर्य शब्द केवल इतिहास में ही रह गया था। यज्ञ संस्था का महत्व कम होने लग गया था। इसलिये ब्राह्मणों का महत्व भी कम होने लग गया था। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में से जाति संस्था का उदय हुआ। गाथा सप्तशती में अनेक वन्य जातियों के उल्लेख दृष्टिगोचर होते हैं। आभीर, गोप, चांडाल, दास, पुलिंद आदि सातवाहन काल में महाराष्ट्र के नागरिक थे।

डा. जोहारपुरकर लिखते हैं कि—'महाराष्ट्र के प्रथम ऐतिहासिक राजवंश-सातवाहन वंश की राजधानी प्रतिष्ठान (आधुनिक

पैठण, जिला-औरंगाबाद) में जैनाचार्यों के विहार के संबंध में कई कथाएँ उपलब्ध हैं। प्रभावक चरित्र प्रकरण ४ तथा विविध तीर्थ कल्प प्रकरण २३ के अनुसार आचार्य कालक ने इस नगर में राजा सातवाहन के आग्रह पर पर्युषण की तिथि भाद्रपद शुक्ल ५ से बदलकर चतुर्थी की थी क्योंकि राजा पंचमी के दिन होने वाले इन्द्रध्वज उत्सव तथा पर्युषण दोनों में उपस्थित होना चाहता था।

प्रतिष्ठान से संबद्ध दूसरे आचार्य पालितिय (संस्कृत में पादलिप्त) की कथा के प्रकरण ५ तथा प्रबंध कोष प्रकरण ५ अधिक सुदृढ़ आधार उपलब्ध हैं। उद्योतन की कुवलय माला (पृ. ३) में हाल राजा की सभा में पालितिय की प्रतिष्ठा की प्रशंसा मिलती है। हाल द्वारा संपादित गाथा सप्तशती में प्राप्त एक गाथा (क्र. ७५) स्वयंभू छंद (पृ. १०३) में पालितिय के नाम से उद्धृत है। पालितिय की तरंगवती कथा महाराष्ट्री प्राकृत का प्रथम प्रबंध काव्य है।

जैन साहित्य में अन्य प्रसिद्ध तीन कथाएँ सातवाहन काल से संबद्ध हैं। हेमचंद्र के परिशिष्ट पर्व (प्रकरण १२-२३) के अनुसार आर्य समिति ने अचलपुर (जिला-अमरावती) के कई तापसों को जैन धर्म की दीक्षा दी थी। जो ब्रह्म दीपिका शाखा कहलाई। वैसे ही आचार्य वज्रसेन ने सापार नगर (बंबई के निकट) में नागेंद्र, चंद्र, निवृत्ति तथा विद्याधर को मुनि दीक्षा दी थी। इन्हीं के नाम से चार शाखाएँ प्रसिद्ध हुई।

वाकाटक

श्री मिराशी के कथनानुसार वाकाटकों का समय राज्य विस्तार के कारण नहीं किन्तु धर्म, विद्या और कला को दिये गये आश्रय के कारण संस्मरणीय है। सातवाहनों ने प्राकृत भाषा को समर्थन दिया तो वाकाटकों ने प्राकृत के साथ साथ संस्कृत भाषा को भी महत्व दिया। स्वयं वाकाटक शासक भी काव्य रचना करते थे। प्रवरसेन ने राम द्वारा सेतुबंध से रावण बध तक कथा पर 'सेतुबंध' नामक काव्य लिखा। सर्वसेन ने 'हरिविजय' लिखा। वाकाटक नृपति द्वारा रचित कुछ सुभाषितों का संग्रह 'गाथा सप्तशती' में है। वाकाटक काल में शिल्प, चित्र तथा स्थापत्य कला का परमोच्च विकास हुआ था। गुफाओं की खुदाई के, शास्त्र का प्रगल्भ विकास हुआ। भित्ति चित्रों की कला वाकाटकों के समय में अति उच्च शिखर पर जा पहुंची थी। अजन्ता की उत्कृष्ट समझी जाने वाली १६, १७ और १९ गुफाओं की खुदाई वाकाटक काल में ही हुई थी। गुफा क्र. १६ में सभी दीवारों पर बुद्ध पूर्व जन्मों के विविध प्रसंगों के चित्र आज भी दिखाई देते हैं। ऐसा निर्देशिता और हाव भाव पूर्णता अजन्ता के चित्रों का स्पष्ट वैशिष्ट्य है। ये चित्र रेखा प्रधान हैं।

वाकाटक और गुप्त राजाओं के काल में चातुर्वर्ण्य को ले जातियां बनने लगी थीं। चांडालों को अस्पृश्य माना जाने लगा था। अस्पृश्यता का शाप इस काल खंड में लगा, जो गुप्त-वाकाटक काल में एक काला धब्बा था।

दक्षिण में वाकाटक और उत्तर में गुप्तों का राज्य था। इस काल में भक्ति मार्ग को प्रोत्साहन मिला। वाकाटक के समय में शैव,

वैष्णव और शाक्त पंथों का प्रसार होने लगा। आर्यों के मूलदेव पूर्ण रूप से कुछ पुराने और कुछ नये रूप में आगे आये। शक्ति देवी का माहात्म्य बढ़ा हुआ दिखाई देता है। लिंग पूजा का फिर से प्रचार होने लगा। अपने-अपने देवताओं का महत्व बढ़ाने के लिये उस देवता के भक्तों ने पुराणों की पुनर्रचना की। कुछ पुराणों की नये से रचना हुई। शिव, विष्णु, गणपति, सूर्य और शक्ति इन पांच देवताओं को गुप्त-वाकाटक काल में प्रमुखता प्राप्त हुई। जो आर्य-अनार्यों के समन्वय की प्रतीक थी। इस समय आर्य-अनार्य की समस्या शेष नहीं रह गयी थी। वैदिक, बौद्ध और जैन इन तीन धाराओं में प्रजा बँट गई थी। इस काल में बौद्ध और जैनियों में श्री भक्ति का प्रभाव बढ़ा और मूर्ति पूजा को अधिक प्रोत्साहन मिला। वैदिकों ने जैनियों को ऋषभदेव और बौद्धों के बुद्ध को अपने आराध्य देवताओं में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया। इससे समन्वय को प्रोत्साहन मिला।

वाकाटकों के बाद महाराष्ट्र में राष्ट्रकूटों की सत्ता प्रबल हुई। किन्तु महाराष्ट्र का कुछ हिस्सा बादामी के चालुक्यों के आधीन था और चालुक्यों ने कुछ समय तक महाराष्ट्र पर राज्य किया।

चालुक्य वंश

चालुक्यों का राज्य छठी शताब्दी में वातापी (बादामी) में स्थापित हुआ था। चालुक्यों में सत्याश्रम, पुलकेशी, बड़ा पराक्रमी था। उसने महाराष्ट्र में मौर्य की समुद्र किनारे की जल सेना को पराभूत कर मौर्य साम्राज्य की महाराष्ट्र की बची खुची सत्ता को समाप्त किया। चालुक्यों के राज्य काल में चीनी यात्री हुएन सांग आया था। जिसने महाराष्ट्र की यात्रा की। अजन्ता और एलोरा की गुफाएँ देखी। उसने महाराष्ट्र के विषय में लिखा—'इस प्रदेश की जमीन उपजाऊ है और इसमें खेती होती है। यहां की हवा उष्ण है। लोग साहसी, सुस्वभावी, प्रामाणिक हैं। उनका रहन सहन सादगीपूर्ण है। विद्या के चाहने वाले, उपकार कर्ताओं के प्रति कृतज्ञ, कोई सहायता या सहयोग चाहे तो आगे बढ़कर देने वाले किन्तु उनका कोई अपमान करे तो प्राणों की बाजी लगाकर बदला लेने वाले हैं। निःशस्त्र व्यक्ति पर आक्रमण नहीं करते। जिस पर आक्रमण करना होगा, पूर्व सूचना देकर शस्त्र धारण करने को अवकाश देते हैं। भागने वाले शत्रु का पीछा करेंगे, किन्तु शरणागत को उदारतापूर्वक अभय देंगे।'

पुलकेशी का पुत्र कीर्तिवर्मन राजा हुआ जिसने ई. ५६५ से ५९७ तक राज्य किया। उसने वनवासी कदम्बों, कोकण के मौर्यों नलों, गंगों और आलुओं को पराजित कर उनके प्रदेशों को जीता। यद्यपि पुलकेशी के राज्य काल में जैन धर्म काफी फला-फूला किन्तु वह स्वयं वैदिक धर्मानुयायी था। उसने ई. ५६७ से जैन मंदिर में अभिषेक तथा अक्षत पुष्प, धूप, दीप आदि के द्वारा पूजन के लिए विपुल दान दिया था। उसी के राज्य में ई. ५०५ में आचार्य रवि-कीर्ती ने एहोल के निकट पेगुत्ति में जिन मंदिर बनवाया था। विशाल जैन विद्यापीठ की स्थापना की थी। कीर्तिवर्मन की मृत्यु के बाद उसके चाचा मंगलीश ने सिंहासन हस्तगत कर सन् ५९७ से ६०८

तक राज्य किया। बादामी की गुरुओं का निर्माण कार्य इसी के समय से प्रारम्भ हुआ। संभवतया इसी के शासन काल में अलतफ नगर (अल्तेम) में चालुक्यों के लघुहब्ब नामक उपराजा की पत्नी से सुप्रसिद्ध जैनाचार्य अकलंक देव का जन्म हुआ।

मंगलीश को उसके भतीजे कीर्तिवर्मन के जेष्ठपुत्र पुलकेशिन द्वितीय सत्याश्रय ने गद्दी से उतार दिया। जिसका राज्य सन् ६०८ से ६४२ तक रहा, उसने वनवासी के अप्पयिक और कदंब नरेश गोविन्द को पराजित किया। वैसे ही कोकण में मौर्यो, लाठ के गुर्जर और मालवा के राजा का दमन किया। पुलकेशिन की सबसे बड़ी विजय थी हर्षवर्धन के आक्रमण को निष्फल करना। हर्षवर्धन बौद्ध धर्म का समर्थक था। पुलकेशिन ने जैन धर्म का, किन्तु सभी धर्मों के प्रति उदार, और सहिष्णु था। पुलकेशिन ने विजय के बाद अपने गुरु रविकीर्ति को ई. ६३४ में एहोल के जैन मंदिर को उदार दान दिया। एहोल के मंदिर में पुलकेशिन की संस्कृत प्रशस्ति मिलती है। ई. ६३८ से ६४० के बीच चीनी यात्री ह्वेनसांग ने पुलकेशिन के राज्य में यात्रा की। उसके विवरणों से पता चलता है कि चालुक्य के राज्य में जैन मंदिरों, निर्गन्थ साधुओं तथा जैन गृहस्थ अनुयायियों की संख्या अधिक थी। यह पराक्रमी राजा ६४३ में पल्लव नरेश नरसिंह वर्मन के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। पुलकेशिन द्वितीय जैन धर्मानुयायी था।

बादामी के चालुक्यों के राज्य समय में इंपेरियल गजट के अनुसार (खंड १९ पृष्ठ २७) धाराशिव की गुफाओं का निर्माण हुआ प्रतीत होता है। यहां की मुख्य पार्श्वनाथ की प्रतिभा अगलदेव नाम से प्रसिद्ध थी।

पुलकेशी के पुत्र विक्रमादित्य साहसांक ने ६४२ से ६८० तक राज्य किया वह वीर, साहसी और बुद्धिमान था। पिता के साम्राज्य और प्रतिष्ठा की स्थापना करने में प्रबल, पुरुषार्थ किया। सुप्रसिद्ध विद्वान और जैन आचार्य अकलंक को अपना गुरु मानता था। यह भी जैन धर्म का उपासक था। ई. ६८० से ६९६ तक विक्रमादित्य द्वितीय ने राज्य किया। इसने भी जिनालयों को बहुत दान दिया था। इसकी बहन कुंकुम महादेवी ने सुन्दर जिनालय का निर्माण कराया। उसके बाद उसके पुत्र द्वितीय विक्रमादित्य ने सन् ७३३ से ७४४ तक राज्य किया। इसका पुत्र कीर्तिवर्मन द्वितीय चालुक्य वंश का अंतिम नृपति था। इसके बाद महाराष्ट्र में राष्ट्रकूटों की सत्ता स्थापित हुई।

यद्यपि चालुक्य जैन धर्मानुयायी थे तो भी वैदिक व बौद्धों के प्रति भी वे उदार थे और उनके राज्य काल में भारतीय संस्कृति व धर्मों की उन्नति हुई।

राष्ट्रकूट वंश

कीर्तिवर्मन को पराजित कर दंतिदुर्ग राष्ट्रकूट वंश का प्रथम प्रतापी नरेश हुआ। वह अपनी राजधानी ऐलिचपुर (अचलपुर) से एलोरा ले गया। जो शैव, वैष्णव, बौद्ध और जैनियों का समन्वय स्थल था। यहां की गुफाएं जो सभी धर्मों की हैं समन्वय का प्रतीक

है। राष्ट्रकूटों का कुलधर्म शैव होते हुए भी वे जैन धर्म के समर्थक तथा संरक्षक थे इतना ही नहीं पर आगे चलकर उनके उत्तराधिकारी जैन हो गए। दंतिदुर्ग का राज्य सन् ७५७ तक रहा। उसके बाद अकालवर्ष सिंहासन पर बैठा उसने ७५७ से ७७३ तक राज्य किया। एलोरा की गुफाओं का निर्माण इसी के समय में ७६९ से ७७० में प्रारंभ हुआ। सुप्रसिद्ध कैलाश मंदिर पहाड़ काटकर बनाया (जैनियों की इंद्र सभा और जगन्नाथ सभा आदि जैन) गुफाएं भी इसी समय के लगभग बनना शुरू हुईं। उसके बाद उसका पुत्र गोविन्द द्वितीय प्रभूत वर्ष विक्रमावलोकने सन् ७७३ से ७७९ तक राज्य किया। जो अयोग्य था। उसका चाचा ध्रुव जो पराक्रमी और वीर योद्धा था, राजा हुआ और उसने ७७९ से ७९३ ई. सन् तक राज्य किया। इसने राष्ट्रकूटों की सत्ता को प्रबल बनाया। इसी की रानी चालुक्य कुमारी शीलभट्टारिका जैन धर्म की भक्त और श्रेष्ठ कवियत्री थी। ध्रुव ने कन्नोज से अपभ्रंश भाषा के महाकवि स्वयंभू को बुलाकर अपने साथ सपरिवार रखा। स्वयंभू ने रामायण, हरिवंश, नागकुमार चरित स्वयंभू छंद आदि ग्रंथों की रचना इसी नरेश के आश्रय में की। डा. पानशा यादवकालीन महाराष्ट्र में लिखा करते हैं यादवों के पूर्व राष्ट्रकूटों का समय जैन धर्म की उन्नति का काल था।

ध्रुव के उत्तराधिकारी पुत्र तृतीय गोविन्द ने ७९३ से ८१४ तक राज्य किया। उसने राष्ट्रकूटों की नई राजधानी मान्यखेट के बाहर प्राचीर का निर्माण कराया। और मान्यखेट को सुन्दर और सुदृढ़ नगरी बनाई। गोविन्द के काल में राष्ट्रकूटों की सभी दृष्टि से उन्नति हुई। राज्य विस्तार बढ़ने के साथ-साथ काफी सांस्कृतिक कार्य हुए। इस काल में जैन धर्म काफी फला फूला। गोविन्द की मृत्यु के समय उसके पुत्र अमोघ वर्ष की आयु मात्र ९ साल की थी। उसका काका कर्मराज, उसका अभिभावक एवं संरक्षक बना। अमोघवर्ष को बालक देख गंग, पल्लव, पांड्य, पूर्वी चालुक्य आदि अधीनस्थ राजाओं ने विरोध किया। किन्तु कर्मराज की स्वामी-भक्ति, वीरता, बुद्धिमत्ता तथा तत्परता के कारण विद्रोह का दमन हुआ। नई राजधानी मान्यखेट में ई. सन् ८२१ में अमोघवर्ष का राज्याभिषेक हुआ। उसकी शक्ति, वैभव और प्रताप उत्तरोत्तर बढ़ता गया। ई. ८५१ में अरब सौदागर सुलेमान भारत आया था। उसने लिखा है भारत का वल्लभराय (अमोघवर्ष) चीन का सम्राट बगदाद का खलिपना और रोम (कुस्तुनतुनिया) का बादशाह ये संसार के महान सम्राट हैं यद्यपि उसे प्रारंभ में उपद्रव, विद्रोह, और युद्ध का सामना करना पड़ा किन्तु कर्मराज तथा सेनापति बंकेय के पराक्रम से शत्रुओं का तत्परता से दमन होता रहा। अमोघवर्ष एक शांतिप्रिय एवं धर्मात्मा नरेश था। सौदागर सुलेमान की तरह अलइंद्रिसी, मसूरी, उब्नहौकल आदि अरब सौदागरों ने भी अमोघवर्ष के प्रताप और वैभव एवं साम्राज्य की शक्ति और समृद्धि की भरपूर प्रशंसा की है। उसका शासन सुव्यवस्थित था। वह विद्वान और गुणीजनों का प्रेमी था। स्वयं भी विद्वान और कवि था। उसने संस्कृत प्राकृत, कन्नड़ और तमिल भाषा में विविध विषयों पर साहित्य सृजन में प्रोत्साहन दिया। आचार्य जिनसेन

राजेन्द्र-ज्योति

उनके गुरु थे। जो दिग्गज विद्वान थे। आचार्य जिनसेन ने अपने गुरु द्वारा अधूरे छोड़े गए जय धवल महाग्रंथ की पूर्ति की। अमोघ-वर्ष ने आचार्य उग्मदित्य जो वैद्यक विद्या के निष्णात थे। उन्हें तथा अन्य वैद्यों व विद्वानों में 'मद्यभास' के वैज्ञानिक विवेचन की चर्चा करवाई। इस ऐतिहासिक चर्चा को कल्याणकारक नामक ग्रंथ में परिशिष्ट के रूप में सम्मिलित किया गया। यों वह अपने उत्तर काल में बीच-बीच में अवकाश ग्रहण कर अकिंचन होकर धर्मापासना करता रहता था। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में राज्य का भार उसने अपने पुत्र युवराजकृष्ण द्वितीय को सौंपकर विरक्त त्यागी श्रावक का जीवन व्यतीत किया। उसका पुत्र कृष्ण-द्वितीय शुभतुंग अकालवर्ष उसके जीवनकाल में ही ई. ८७८ में राज्य-गद्दी पर आसीन हुआ। वैसे वह ८७५ से ही राजकाज देखता था, पर राज्याभिषेक ८७८ में हुआ। उसने ९१४ तक राज्य किया, जो जैन धर्मानुयायी था और उसके राज्य काल में भी मंदिरों, मठों, विद्याकेन्द्रों को विपुल दान दिया गया। जैन साहित्य की रचना हुई थी। उसके पश्चात् उसका पोता इंद्र तृतीय ९१४ से ९२२ तक शासक रहा। इसने भी अनेक राजाओं को अपने सेनापति नरसिंह और श्री विजय की सहायता से पराजित किया था। वह स्वयं तो जैन था ही पर उसके शूर सेनापति जैन ही थे। उसके बाद ९२२ से ९३९ तक जो राजा हुए हैं वे कोई महत्वपूर्ण कार्य न कर सके पर ९३९ में तृतीय कृष्णराज अमोघवर्ष सिंहासन पर बैठा जो राष्ट्रकूट वंश के अंतिम नरेशों में पराक्रमी था और सुयोग्य था। वह वीर योद्धा, दक्ष, सेनानी, मित्रों के प्रति उदार और धर्मात्मा नरेश था। अपने पूर्वजों की भांति जैन धर्म का पोषक और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके गुरु जैनाचार्य वादिमंगल भट्टी थे। जो उसके शत्रुओं को पराजित करते व युद्ध की प्रेरणा देते थे। उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की। इसने कन्नड़ के महाकवि पोन्न का सम्मान किया था। सोमदेव ने थरासिलंक व भीति वाक्यामृत की रचना कृष्ण के चालुक्य सामंत आश्रय में गंगाधर नगर में की थी। कृष्ण के प्रधानमंत्री भरत थे। वे जैन धर्म के अनुयायी और अपभ्रंश के महाकवि पुष्पदंत के आश्रयदाता थे। कृष्ण के बाद उसका भाई खोटिग नित्यवर्ष राजा हुआ। जिसने ९३७ से ९७२ तक राज्य किया। मालवे के सियकहर्ष ने ९७२ में मान्यखेट पर आक्रमण किया, जिसमें खोटिग मारा गया और राजधानी को लूट कर भस्म किया। जिसका कवि पुष्पदन ने विनाश का करुण चित्रण किया। इसके बाद खोटिग का पुत्र कर्क द्वितीय राजा हुआ। जिसने सिर्फ १ वर्ष राज्य किया। राष्ट्रकूट का अंतिम राजा इंद्र चतुर्थ था। वह वीर तथा योद्धा था। उसने और सेनापति मारसिंह ने अनेक युद्ध कर राज्य को संभालने की कोशिश की पर वे स्थायी रूप से सफल न हो सके। ९७४ में मारसिंह ने सल्लेखना पूर्वक समाधि मरण प्राप्त किया। ९८२ में इन्द्र भी जैन मुनि हो गया। इन्द्र चतुर्थ ने भी कई वर्ष सल्लेखना द्वारा मृत्यु का वरण किया उसकी मृत्यु के बाद राष्ट्रकूट वंश और साम्राज्य का अंत हुआ।

वी. नि. सं. २५०३

डा. पानसे यादवकालीन महाराष्ट्र में लिखते हैं कि 'राष्ट्रकूटों का राज्यकाल जैन धर्म की विशेष उन्नति का समय था।' राष्ट्रकूट वंश के राजा तो जैन थे ही पर उसके अधीन राजा, सामंत, सेनापति तथा अधिकारी भी जैन धर्म के उपासक थे। कई राज्य पुरुषों ने संन्यास लेकर सल्लेखना के द्वारा समाधि मरण स्वीकृत किया। राजाओं की तरह विद्वान आचार्यों ने भी जैन तत्वों का प्रभावशाली प्रचार किया, विविध भाषाओं में, लोकभाषा में धार्मिक साहित्य निर्माण किया जिसका जन मानस पर प्रभाव पड़ा।

राष्ट्रकूट कुल का शासन करीब २५० साल तक महाराष्ट्र में रहा। प्रारंभ में राष्ट्रकूट राजा हिन्दूधर्म के रहे तो भी उन्होंने जैन धर्म को आश्रय तथा संरक्षण दिया था। आगे चलकर तो राजा जैन ही हो गये और जैन धर्म एक तरह से राजधर्म ही बन गया था। बौद्ध निस्तेज हो गये थे। राष्ट्रकूटों के राज्यकाल में यज्ञ संस्था समाप्त-सी हो गई थी किन्तु दैनिक जीवन में स्नान, संध्या, पूजा, अची आदि आचारों का सख्ती से पालन किया जाने लगा था। मूर्तिपूजा का महत्व बढ़ा। व्रतों की अत्यधिक वृद्धि होने लगी। पुराणों को प्रोत्साहन मिलने से देवी-देवताओं की संख्या में वृद्धि हुई। तीर्थयात्रा और दान धर्म को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। हूण, शक आदि विदेशियों को भारतीय बनाया गया। डा. अल्लेकर कहते हैं—'यद्यपि शंकराचार्य का उदय इस काल में हुआ था किन्तु उनके जगद्गुरुत्व या मठाधिपतित्व को इस काल में मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी।' वैसे ही यादवकालीन महाराष्ट्र में डा. पानसे ने लिखा है कि 'शंकराचार्य के बाद पूरे भारत में जो हिन्दू धर्म के पुनरुज्जीवन की बाढ़ आई उसका दिखाई दे ऐसा परिणाम जैन धर्म पर नहीं हुआ। तंत्र मार्ग का और नाथ मुनियों का प्रभाव महाराष्ट्र में बढ़ा।

इस काल में हिन्दू समाज में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आया। मुस्लिमों के साथ संपर्क में आने से जाति बंधनों में अधिक सख्ताई और तीव्रता आई। वैश्य और शूद्रों पर कष्टप्रद जाति बंधन निर्माण होने लगे। बहुजन समाज में दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक दृष्टि से विषमता अत्यधिक बढ़ी। पावित्र्य के विषय में ऐसी कल्पना रूढ़ हुई कि भिन्न-भिन्न जातियों में रोटी-बेटी व्यवहार निषिद्ध माना जाने लगा। छुआछूत और पावित्र्य को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया जाने लगा। ब्राह्मणों में भी ऊंच-नीच के भेद शुरू हुए। धोबी, मोची, बुनकर, कुम्हार, कोली आदि जातियां शूद्र मानी जाने लगीं। धर्म भ्रष्ट को फिर से परिवर्तन करने में जो देवल स्मृति में सुविधा या उसमें तथाकथित सनातनी बाधा निर्माण करने लगे। इसी काल में मंदिरों में देवदासी प्रथा शुरू हुई। विधवा के केश बपन तथा सतीप्रथा को बढ़ावा मिला। सनातनियों में असहिष्णुता, बेहद देवताओं की वृद्धि और संप्रदाय व पंथों की बाढ़ और मतभेदों के कारण मुसलमानों को अपने धर्म का प्रसार करने एवं सत्ता बढ़ाने की सुविधा हुई।

१६९

राष्ट्रकूटों के समय में कला, स्थापत्य, साहित्य के विकास के साथ साथ शिक्षा के क्षेत्र में विकास हुआ। जैन गुरुओं ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। पाठशालाएँ तथा विद्यालयों में शिक्षा देने का काम जैन गुरुओं के द्वारा काफी मात्रा में होता था। महाराष्ट्र में शिक्षा का प्रारम्भ ॐ नमः सिद्धेभ्यः से होता था।

कल्याणी के चालुक्य

राष्ट्रकूट की सत्ता समाप्त कर कल्याणी के राजा ने महाराष्ट्र पर सत्ता कायम करने का प्रयत्न किया किन्तु वे महाराष्ट्र के कुछ भाग पर ही आधिपत्य पा सके। इनके राज्य में भी साहित्य रचना हुई। इसी काल में महाराष्ट्र की स्त्रियाँ पिसाई के समय ओव्या (गाने) गाने लगी थी। संभव है वे मराठी की ही हों। यादवों ने चालुक्यों को पराजित कर दिया। राष्ट्रकूटों के बाद चालुक्यों की तरह शिलादार तथा कदंबों के हाथ में महाराष्ट्र का कुछ हिस्सा रहा।

कोंकण के शिलादार

यह विद्याधरवंशीय क्षत्रिय थे। जो अपने को जीमूतवाहन के वंशज मानते थे। प्रारंभ में उनकी राजधानी करहद (कन्हड) थी। और बाद में क्षुल्लकपुर (कोल्हापुर) रही। सन् १००७ से १००९ में शिलादारों में राज प्रसिद्ध राजा था। किंतु इस वंश में गंडरादित्य प्रसिद्ध राजा हो गया वह दानशूर एवं समदर्शी था। उसने अपने दान से ब्राह्मणों को तो लाभान्वित किया ही आजरेना (आजरे) में सुन्दर जिनालय भी बनवाया। उसने एक ऐसा मंदिर बनवाया जिसमें बुद्ध, शिव और जिन की मूर्तियाँ थीं। इसका उत्तराधिकारी विजयादित्य अमात्य निम्बदेव बड़े धर्मात्मा धर्म शास्त्रों का ज्ञाता था। उसने कोल्हापुर में विशाल जिन मंदिर बनवाया था। विजयादित्य का काल ११४० से ११६५ तक रहा। उसके सेनापति बोप्पण के विषय में प्रशस्ति में बड़ी प्रशंसा पाई जाती है। उसने राजा के लिए मंदिर बनाना शुरू किया था। उसका एक मंत्री लक्ष्मीधर था। विजयादित्य के राज्य के बाद उसके पुत्र द्वितीय भोज का राज्य ई. ११६५ से १२०५ तक रहा। वह भी जैन धर्म का परम भक्त था। इसके बाद यादवों ने शिलादारों को अपने आधीन कर लिया

यादव

नवीं शताब्दि में यादवों के राजा दृढप्रहार की राजधानी नासिक जिले के चांदवड में थी जो चंद्रादित्यपुर नाम से प्रसिद्ध था। दृढप्रहार के पुत्र सेउनणचंद्र ने सेउनणपुर नामक गांव बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। उसके आधीन प्रदेश सेउनण देश के नाम से पहचाना जाता था। इसमें नासिक, अहमदनगर और औरंगाबाद जिले का क्षेत्र था। ये यादव राष्ट्रकूटों के अधीनस्थ थे। आधीन रहते हुए भी राष्ट्रकूटों के साथ समानता का व्यवहार था। राष्ट्रकूट परिवार की राजकन्या के साथ द्वितीय मल्लम का विवाह हुआ था। राष्ट्रकूट राजाओं के दुर्बल होने पर चालुक्यों की सत्ता महाराष्ट्र पर स्थापित हुई तो

मल्लम द्वितीय ने चालुक्यों की अधीनता स्वीकार की। चालुक्य राज दूसरे तैलप के साथ राजा वावपती मुंज का युद्ध हुआ उसमें मल्लम ने चालुक्यों की ओर से पराक्रम कर मुंज को हराया जिससे चालुक्यों पर उसका प्रभाव बढ़ा। मल्लम के समय में भी चालुक्यों का यादव परिवार के साथ वैवाहिक संबंध था सेउनणचंद्र और उसके पुत्र ने छटे विक्रमादित्य की सहायता की थी और परमदेव के पुत्र सिघण ने उसे विविध आक्रमणों में सहायता की थी। ई. स. ११५१ में तृतीय तैलप को उसके प्रधान विज्जल ने निष्प्रभ कर ११६२ में अपनी सत्ता प्रस्थापित की और सम्राट बन गया। इस सत्तांतरण में यादव राजा पल्लुगी ने कलचुरियों को पराजित कर काफी प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया था। विज्जल के बाद कलचुरिवंश के राजा दुर्बल हो गए, तब ११८३ में यादवों ने उनकी सत्ता नष्ट कर पंचम मल्लम ने यादवों का साम्राज्य स्थापित कर देवगिरी को अपनी राजधानी बनाया। पंचम मल्लम ने ई. स. ११८३ से ११९१ तक राज्य किया। उसके बाद उसके पुत्र जेनपाल ने ई. स. ११९१ से १२१० तक राज्य किया। इतिहासकार कहते हैं कि वह जैन था बाद में महानुभाव हो गया। उसके बाद सिघण राजा बना। सिघण ने होयसालों से दक्षिण का प्रदेश जीता और १२१८ में कोल्हापुर के शिलादारों का राज्य जीतकर वह प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया। उसके बीचक और खोलेश्वर प्रमुख सेनापति थे, जो बड़े पराक्रमी थे। उसने अपने राज्य का विस्तार महाराष्ट्र के बाहर दक्षिण व उत्तर में भी किया। उसकी सेना के नेपाल तक जाने का उल्लेख मिलता है।

सिघण के बाद उसका पौत्र कृष्णराज गद्दी पर बैठा। उसका राज्य १२४७ से १२६० तक रहा। कृष्ण का मुस्लिमों के साथ मालवे में पहली बार संघर्ष हुआ उसने मालवे से लौटते समय अमीरों का पराभव किया। कृष्ण के बाद उसके भाई महादेव ने १२६०-१२७१ तक राज्य किया। उसने कोंकण के शिलादारों का राज्य अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसने मालवा और तेलंगाना प्रांत पर आक्रमण करके राज्य विस्तार का प्रयत्न किया। महादेव के काल में देहातों में तुर्कों का उपद्रव बढ़ने का जिक्र महानुभावों के साहित्य में आता है। महादेव ने अपने पुत्र आमण को युवराज बनाया जब कि उसके भतीजे रामदेव राव का हक था। इस घटना से रामदेवराव को क्रोध आया। उसने चुनिन्दा सैनिकों का नृत्य पृथक तैयार कर किले में प्रवेश किया और गढ़ के लोगों की असावधानी का लाभ उठाकर किले पर अधिकार प्राप्त कर आमण को कैद कर लिया और उसकी आंखें निकाल दी।

रामदेव ने सन् १२७१ से १३०९ तक राज्य किया। उसने अपना राज्य विस्तार विदर्भ तक किया। वहां से मध्यप्रदेश होते हुए वाराणसी तक गया। वहां उसने मुस्लिमों को निकाल बाहर किया और शारंगपाणि का सुवर्ण मंदिर बनाया। रामदेव के समय में यादवों का राज्य विस्तार बढ़कर यादवों का दक्षिण का प्रबल साम्राज्य निर्मित किया। किन्तु अपनी असावधानी के कारण अल्लाउद्दीन के देवगिरी के हमले का वह मुकाबला नहीं कर

सका। देवगिरी के किले में अनाज के बदले नमक के बोरे रखे गये, जिससे अल्लाउद्दीन से लड़ते समय उन्हें भुखमरी का सामना करना पड़ा। रामदेव का पुत्र शंकरदेव होयसलों के साथ युद्ध पूरा कर वापस लौटा तो उसने अल्लाउद्दीन की सेना पर आक्रमण किया, पर उसमें उसकी हार हो गई। अन्त में रामदेव को अल्लाउद्दीन के साथ सुलह करनी पड़ी। अल्लाउद्दीन बहुत बड़ी संपत्ति लेकर लौटा। रामदेवराव को अल्लाउद्दीन ने १३०७ में मलिक काफूर को भेजकर कैद करवाकर लाया और छह महीने बाद उसे मुक्त किया। मलिक काफूर ने वरंगल पर आक्रमण किया तब होयसाल की राजधानी का रास्ता बताने में रामदेवराव ने सहायता की थी। रामदेवराव के बाद उसका पुत्र शंकरराव राज्य गद्दी पर १३०९ में बैठा। उसने दिल्ली दरबार को निश्चित कर न भेजने से वसूली के लिए मलिकवर को भेजा। उसने १३१२ में शंकरदेव को मार डाला। शंकर के पश्चात् १३१२ में हरपालदेव देवगिरी का राजा हुआ। उसने मुस्लिमों को अपने राज्य से निकाल कर बाहर किया। इस पर मुबारक शाह खिलजी ने देवगिरी पर भयानक आक्रमण कर हरपाल देव को कैद कर उसकी खाल खिचवा ली। इस प्रकार देवगिरी के यादवों के राज्य का अंत हुआ। यादव हिन्दू धर्म के अनुयायी थे किन्तु जैन धर्म के प्रति भी सहिष्णु थे। साहित्य और कला के भी रसिक थे।

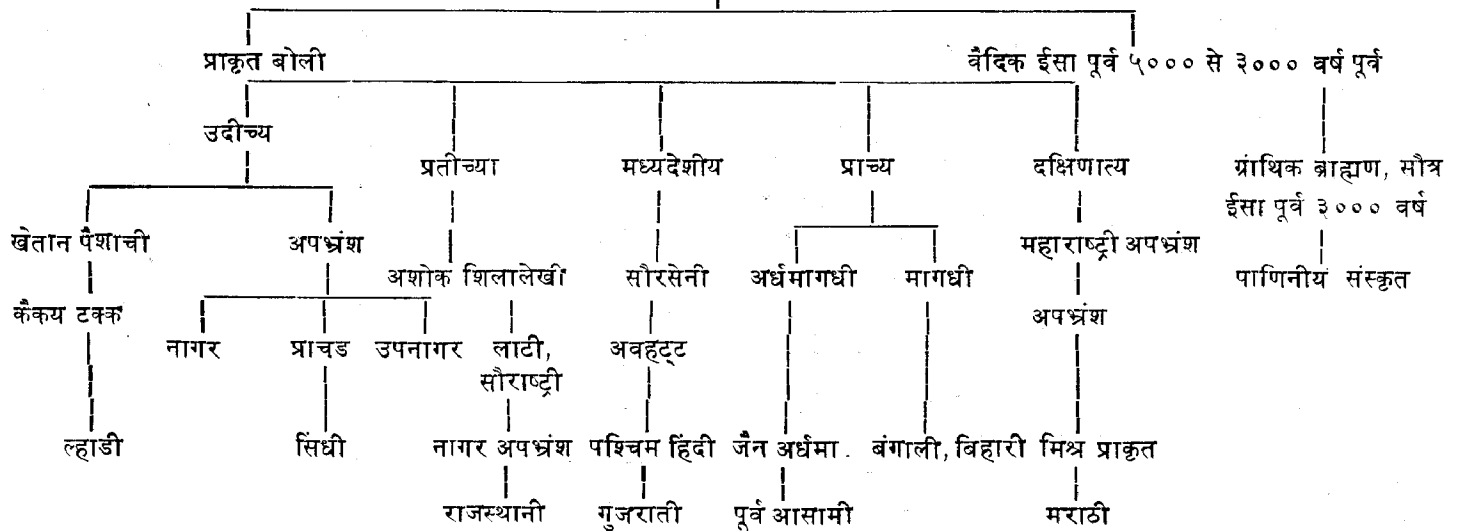
मराठी भाषा और साहित्य पर जैनियों का प्रभाव

महाराष्ट्र के संतों एवं उनके कार्यों के विषय में जानने के पूर्व ऐतिहासिक काल की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति जानने की तरह यह देखना भी उपयुक्त होगा कि महाराष्ट्री, प्राकृत, महाराष्ट्री अपभ्रंश भाषा के साहित्य का जो सर्जन हुआ उसे प्रथम समझने का प्रयत्न करें क्योंकि इसके बिना महाराष्ट्र के संतों के कार्य और विचारों की पार्श्वभूमि का ज्ञान नहीं हो सकता।

भाषा और साहित्य के मूल प्रवाह के आधार पर ही विभिन्न क्षेत्रीय अथवा वैचारिक संस्कृतियों की धारा प्रवाहमान होती है। प्रायः सभी संस्कृतियों के मूल बीज, प्राचीन जनपद बोलियों तथा संतों की वाणी में सुरक्षित रहता है। महाराष्ट्र में जैन धर्म तथा संस्कृति का विपुल योगदान रहा है। जैनागम की प्राकृत भाषा की महाराष्ट्री प्राकृत कहलाती है। और आज भी मराठी भाषा के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों में सहस्राब्दियों से पूर्व के शब्द तत्सम एवं तद्भव रूप में उपलब्ध होते हैं। जैन धर्म एवं संस्कृति के योगदान का सही आकलन तभी संभव है, जब हम जैन आगमों में प्रयुक्त प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषा एवं उसके प्रवाह के उद्गम की गवेषणा कर लें।

इस दृष्टि से मराठी भाषा के उद्गम और विकास के लेखक कृष्णाजी पांडुरंग कुलकर्णी ने भाषायी विकास का जो वंश वृक्ष दिया है, वह मराठी भाषा के उद्गम समझने में बड़ा उपयोगी है।

आर्य भाषा ईसा पूर्व ५००० वर्ष



महाराष्ट्र की भूमि को अनेक जैनाचार्यों ने अपने विहार से लाभान्वित किया है। प्राकृत के प्रसिद्ध कथाकार पादलिप्तसूरि महाराष्ट्र में ही राजा सातवाहन के दरबार में थे। पाललिप्त ने तरंगवती नामक कथा महाराष्ट्रीय प्राकृत-महाराष्ट्र की जन-भाषा में लिखी है। यह ग्रंथ लोक जीवन के वर्णनों से ओत-प्रोत है। महाराष्ट्री प्राकृत का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ सेतुबंध

है। इसके रचयिता प्रवरसेन महाराष्ट्र के राजा और कवि थे। उन्होंने सेतुबंध में राम कथा के प्रसंग को बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। इसी तरह आगे चलकर गड्डवहो, लीलावओ-कहा आदि अनेक ग्रंथ भी महाराष्ट्री प्राकृत में लिखे गये हैं। इस प्राकृत साहित्य ने महाराष्ट्र के लोक साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। महाराष्ट्र की भूमि को पवित्र करने वाले

जैन आचार्यों में कालकाचार्य भी हैं। निशीथचूर्णी से पता चलता है कि आचार्य कालक उज्जैनी से महाराष्ट्र के प्रतिष्ठान नगर में पधारे थे। वहाँ राजा सातवाहन ने उनका भव्य स्वागत किया था। आचार्य कालक ने महाराष्ट्र में ही जैनधर्म के प्रसिद्ध पर्युषण पर्व को पंचमी के स्थान पर चतुर्थी को मनाना प्रारंभ किया था। महाराष्ट्र में यह पर्व श्रमण पूजा (समणपूथ) के नाम से प्रसिद्ध हुआ—

महाराष्ट्र में चांदा जिले में एक बैरागढ़ स्थान है। यह पुराना 'वेण्णयड' है, जहाँ से प्रसिद्ध जैन आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि गिरनार की ओर गये थे। अतः दूसरी शताब्दी में भी महाराष्ट्र में जैन आचार्य विहार होना था। प्रभावक चरित्र के अनुसार आचार्य सिद्धसेन का देहावसान प्रतिष्ठान नगर में हुआ था। तथा प्रबंधकोष के अनुसार आचार्य भद्रबाहु प्रतिष्ठान के ही रहने वाले थे। अतः महाराष्ट्र से कई जैनाचार्यों का संपर्क रहा है। आचार्य समन्तभद्र सतारा जिले के करहाटक (किराड) में एक वादविवाद में सम्मिलित हुए थे। प्राचीन समय में नहीं अपितु मध्यकाल में भी अनेक जैन आचार्य महाराष्ट्र में हुए हैं। कोल्हापुर में बारहवीं शताब्दी में माघनन्दी नाम के प्रसिद्ध आचार्य थे। कोल्हापुर के ही समीप अर्जुरिका (आजरे) नगर में आचार्य सोमदेव ने सन् १२०५ में शब्दार्णवचंद्रिका नामक व्याकरण-ग्रंथ की रचना की थी।

अपभ्रंश के प्रसिद्ध कवि, स्वयंभू एवं पुष्पदंत भी महाराष्ट्र (बरार) के शोरोह्णिणखेड़े के निवासी थे।

जैन आचार्य महाराष्ट्र में केवल भ्रमण ही नहीं करते थे अपितु महाराष्ट्र का संस्कृति और जन-जीवन के संबंध में भी बहुत-सी जानकारी अपने ग्रंथों में प्रस्तुत करते थे। आठवीं शताब्दी के प्रसिद्ध आचार्य उद्योतनसूरि ने अपनी कुवलयमाला में महाराष्ट्र के संबंध में विशेष जानकारी दी है। उन्होंने कहा कि महाराष्ट्र के काम एवं व्यापारी दक्षिण भारत में विजयपुरी तक शिक्षा प्राप्त करने अथवा व्यापार करने जाते थे। उन्हें तब भी मरहट्ट (मराठे) कहा जाता था। उद्योतनसूरि ने महाराष्ट्र की स्त्रियों को हल्दी के समान रंगवाली गौरवपूर्ण, कहा है। एक अन्य वर्णन के प्रसंग में उद्योतन ने महाराष्ट्र के व्यापारी के रूप, रंग, स्वभाव व भाषा आदि के संबंध में कहा है कि मराठे व्यापारी मजबूत, ठिगने, श्यामांग, सहिष्णु, स्वाभिमानी तथा कलाप्रिय थे। वे टिण्णत्थे, गहियल्ले जैसे शब्दों को बोल रहे थे। ये शब्द मराठी भाषा में दिलेले एवं घेतलेले के रूप में प्रचलित हैं। जिनका अर्थ है—दिया और लिया।

भाषाओं के विषय में महाकवि श्री राजशेखर ने कहा— गीर्वाणवाणी सुनने योग्य, प्राकृत स्वभाव से मधुर, अपभ्रंश ऐव्य और पैशामी रसपूर्ण है। महाराष्ट्र में महाराष्ट्री अपभ्रंश में जैनियों की प्रचुर रचनाएँ भी मिलती हैं।

दक्षिण भारत में महाराष्ट्र में प्राचीन समय से ही संस्कृत और प्राकृत का प्रभाव रहा है। महाराष्ट्री प्राकृत चूकि लोकभाषा थी

अतः उसने आगे आने वाली अपभ्रंश और आधुनिक मराठी को अधिक प्रभावित किया है। प्राकृत और महाराष्ट्री भाषा का तुलनात्मक अध्ययन कई विद्वानों ने प्रस्तुत किया है। यद्यपि महाराष्ट्री प्राकृत ही मराठी भाषा नहीं है। उसमें कई भाषाओं की प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण है। फिर भी प्राकृत के तत्व मराठी में अधिक हैं। जो शब्द ५-६ठी शताब्दी के प्राकृत ग्रंथों में प्रयुक्त होते थे वे भी आज की मराठी में सम्मिलित हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि प्राकृत और मराठी का संबंध बहुत पुराना है। भाषा की दृष्टि से मराठी के वे कुछ शब्द यहाँ प्रस्तुत हैं जो प्राकृत साहित्य में भी प्रयुक्त हुए तथा जिनके दोनों के समान अर्थ हैं। कुछ शब्द नीचे दे रहे हैं—

प्राकृत	मराठी	अर्थ (हिन्दी में)
अणिय	अणिया	अग्रभाग
अंगोहलि	आंधोल	गले का स्नान
अुन्दर	अुन्दौर	चूहा
कच्छोट्ट	कासोटा	कटिवस्तु
करवली	करवत	करवा
कोल्लुग	कोल्हा	गिदड़
गार	गार	पत्थर
छंगुडिया	गुटी तोटण	घोडा
चिक्खल्ल	चिखल	कीचड़
वैली	सेली	बकरी
छेप्य	शेपुटी	पूछ
जल्ल	जाल	शरीर का मेल
डिकुण	डेंकण	खटमल
तुंड	तोंड	मुंह
तक्क	नेम	मठा
तुली	तूली	सूती चादर
णिरुत्त	निस्ते	निश्चय
ददर	दादर	सीढ़ी
दोद्धिअ	दूधी	लोकी
नेअुण	नेऊन	ले जाकर
पोट्ट	पोट	पेट
भुक्क	भुंकणे	भोंकना
माउच्छिय	माउसी	मौसी
मेला	मेला	मेला
मेहुण	मेवणा	साला
रंगावली	रांगोली	रंगोली
वाउल्ल	बाहुली	गुड़िया
सुण्ह	सून	बहु

इस दृष्टि से मराठी भाषा और महाराष्ट्र की संस्कृति पर जैनियों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। □